जीवन के लिए, जीवन के माध्यम से शिक्षा

देवी प्रसाद

औपनिवेशिक राज के दौरान अंग्रेजों ने किस प्रकार भारत की स्थापित शिक्षा व्यवस्था, उद्योग, कृषि व स्थानीय परम्पराओं और संस्थाओं को नष्ट कर भारत को मानसिक रूप से गुलाम बनाए रखने के लिए क्या दूरगामी रणनीतियां बनाईं, को इस आलेख में प्रस्तुत किया गया है। आलेख में लेखक ने एशियाई देशों के साहित्य के प्रति ब्रिटिश राज का क्या दृष्टिकोण था, गांधीजी के शिक्षा से संबंधित दक्षिणी अफ्रीका के अनुभवों व भारत में उनके शिक्षा से संबंधित प्रयोगों पर भी प्रकाश डाला है। किन परिस्थितियों में गूजरात[1] विद्यापीठ की स्थापना हुई और आगे चलकर कैसे अन्य राष्ट्रीय स्तर के विश्वविद्यालयों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ, की कहानी इस लेख में बयां की गई है।

औपनिवेशिक राज के दौरान भारत में शिक्षा

औपनिवेशिक राज के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन के एक अंश के रूप में भारत को शिक्षा नियोजन के संबंध में एक नई सोच की आवश्यकता थी। सबसे पहले, औपनिवेशिक शासकों द्वारा हमारी स्थानीय परम्पराओं एवं संस्थाओं को ध्वस्त करके थौंपी गई शिक्षा पद्धति से छुटकारा पाना जरूरी था, व दूसरा अपनी स्वयं की शिक्षा पद्धति का निर्माण करना जिसके द्वारा सच्चे अर्थ में एक स्वतंत्र व समतावादी भारत का निर्माण हो सके।

उन्नीसवीं सदी के मध्य तक हमारे देश के शिक्षित अभिजात्य वर्ग ने अपनी पहचान बना ली थी। यह भारत के राष्ट्रवाद के विकास व सामाजिक सुधार के प्रारम्भ का काल था। स्वतंत्रता आंदोलन के उस काल में सामाजिक सुधारों की ओर देखने के दो नजरिए थे। कुछ नेता सोचते थे कि हम ब्रिटिश शासकों के स्तर पर तभी पहुंच सकते हैं, जब हम ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली में शिक्षित हों। इन लोगों ने इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कुछ शिक्षण संस्थाएं भी स्थापित की। हालांकि ये लोग भी अपनी जड़ों को खोजने में विश्वास रखते थे, ये शायद यह सोचते थे कि ब्रिटिश हम पर राज इसलिए कर पाए क्योंकि वे हमसे कई मायनों में बेहतर थे।

दूसरी तरफ, लोगों को अपने वैदिक कालीन समय में वापस ले जाने की भी मुहिम चली। दूसरे शब्दों में यह हमारी सभ्यता की जड़ों को खोजने की मुहिम थी। इन लोगों ने गुरुकुलों की स्थापना की व अन्य पारंपरिक अध्यापन व अधिगम के तरीकों को अपनाया। इन लोगों का मानना था कि भारत अपने पारंपरिक जीवन शैली से भटकने के कारण कमजोर हुआ है।

इन दोनों में से किसी भी विचारधारा ने मूल मुद्दों

1. **1922 में जब अहमदाबाद (गुजरात) में महात्मा गांधी ने 'गूजरात विद्यापीठ' की स्थापना की थी, तब उन्होंने 'गूजरात' शब्द का इस्तेमाल किया था। तब से इसे इसी तरह लिखा जाता है।**

की ओर ध्यान नहीं दिया। मुद्दे जो सच्चे माने में स्वतंत्रता व स्वावलंबन से जुड़े थे।

भारत बुरी तरह से गरीबी झेल रहा था व इसके लोग बेहद हतोत्साहित हो गए थे। भारत के अधिकांश लोगों ने स्वतंत्रता के स्वाद को ही भुला दिया था। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में देश की सैनिक ताकत, अगर कुल मिलाकर देखें तो काफी बढ़ गई थी। परन्तु 1857 की सैनिक बगावत के बाद लोगों का उत्साह बहुत गिर गया था और ब्रिटिश शासकों ने सोचा कि भारतीय सैनिकों की ताकत के मद्देनजर वे भारत को हमेशा के लिए सैनिक ताकत के बल पर गुलाम बनाकर नहीं रख सकते, अतः उन्होंने चालाकी से देश को निशस्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। यहां तक कि एक सामान्य किसान भी अपनी फसल की जंगली जानवरों से रक्षा के लिए बन्दूक नहीं रख सकता था।

रमेश दत्त के अनुसार 18 वीं सदी के मध्य तक भारत औद्योगिक क्षेत्र में एक अग्रणी देश था। पर 19 वीं सदी के अंत में भारत के उद्योगों को नष्ट कर दिया गया था। एक समय जो देश सम्पूर्ण विश्व को कपड़ा निर्यात करता था उसे अब अपनी आवश्यकताओं के लिए ब्रिटेन से कपड़ा आयात करना पड़ रहा था।

रिचार्ड ग्रेग ने 'व्हाइट साहेब्स् इन इंडिया' में लिखा है कि कई देश अपने जहाज भारतीय जहाज निर्माताओं से बनवाते थे। उन्होंने 1670 में लिखा है–

''कई अंग्रेज व्यापारी अपने जहाज हर साल बनवाते हैं। यहां सबसे अच्छी लकड़ी की पैदावार होती है। सबसे अच्छा लोहा समुद्र के किनारे उपलब्ध है . ..इनके पास जहाजों के लिए रस्से आदि सामान बनाने के सर्वोत्कृष्ट तरीके थे।''

लॉर्ड वेल्सले ने 1800 में लिखा–

'कलकत्ता के बन्दरगाह में इंग्लैण्ड सामान ले जाने के लिए 10,000 टन के जहाज उपलब्ध हैं।'

टेलर ने अपनी पुस्तक हिस्टरी ऑफ इंडिया में श्रीमती बेसंट की पुस्तक ''इंडिया बॉन्ड एण्ड फ्री'' से उद्धृत किया है–

'पोर्ट ऑफ लंदन में जब भारतीय जहाजों में भारत का माल आता था, तब वहां के थोक व्यापारियों में इतना अधिक आश्चर्य दिखाई देता था, जितना शायद थेम्स में दुश्मन के बेड़े के आने पर भी दिखाई न दे। पोर्ट ऑफ लन्दन के जहाज निर्माताओं ने इतना शोर मचाया कि आखिर मजबूर सरकार ने भारत के इस उद्योग को नष्ट कर दिया।'

सबसे खराब जमींदारी प्रथा ने मानवीय संबंधों को प्रभावित किया और समाज को स्तरों में विभाजित कर दिया, जो कि भारत के लिए एक अनजान अनुभव था। पंचायतों का सुनियोजित ढंग से नष्ट किया जाना, यहां की स्थानीय स्वशासन पद्धति, प्रशासन व न्यायपालिका को नष्ट करने का बुरा प्रभाव सामाजिक संबंधों पर पड़ा।

औपनिवेशिक शासनकर्ता केवल भारत के उद्योग, कृषि, प्रशासनिक व न्यायिक संस्थाओं व यहां की प्रतिरक्षा प्रणाली को नष्ट कर ही संतुष्ट नहीं हो सकते थे। वे भारत को हमेशा के लिए गुलाम बनाना चाहते थे और अंग्रेजों को यह मालूम था कि केवल भौतिक गुलामी ही पर्याप्त नहीं है, मनोवैज्ञानिक गुलामी भी उनकी लक्ष्य प्राप्ति के लिए सबसे उपयुक्त तरीका हो सकता है। अतः ब्रिटिश राज का सबसे महत्वपूर्ण शिकार यहां की शिक्षा ही बनी।

उपनिवेशकर्ताओं ने शैक्षिक सुधारों पर आधारित एक सुनियोजित दूरगामी रणनीति बनाई। हमारी शैक्षिक परंपराओं को, जो यहां के जनसामान्य में समाहित थी और लोगों में हमारे सांस्कृतिक मूल्यों

को इतने लम्बे समय तक कायम करने का एक सशक्त साधन थी, को कमजोर करने के उन्होंने हर संभव प्रयास किए।

उपनिवेशकर्ताओं का एशियाई देशों के साहित्य के प्रति क्या दृष्टिकोण था हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिए। लार्ड मैकॉले ने उनके प्रसिद्ध मिनट्स में लिखा था –

'मुझे संस्कृत या अरबी भाषा का कोई ज्ञान नहीं था, परन्तु मैं जितना भी कर सकता था, उतना मैंने प्रयास किया है। उनके मूल्यों के बारे में सही आकलन करने के लिए मैंने प्रसिद्ध संस्कृत व अरबी भाषा साहित्य के अनुवाद पढ़े हैं। मैंने यहां व अपने देश में पूर्वी भाषाओं के जानेमाने विद्वानों से चर्चा की है। मैं प्राच्य विद्याओं को प्राच्यवेत्ताओं के मूल्यांकन के आधार पर ही देखने के लिये तैयार हूं। मैंने उनमें से एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं पाया, जो इस बात से इंकार करता हो कि यूरोप के पुस्तकालय की एक अलमारी पूरे भारत व अरेबिया के सम्पूर्ण स्थानीय साहित्य के बराबर है।'

उन्होंने आगे कहा– ''हमें अब ऐसे वर्ग को तैयार करना चाहिए, जो हमारे व लाखों लोगों के बीच जिन पर हम राज कर रहे हैं, दुभाषियों का काम कर सकें। ऐसे व्यक्तियों का वर्ग जो खून व रंग से तो भारतीय हों पर अपनी पसन्द, राय व आदर्शों व बुद्धिमत्ता में अंग्रेज हों।''

भारत के गवर्नर लॉर्ड बेन्टिक ने कहा– ''मैं मिनिट्स में व्यक्त भावनाओं से पूर्णतया सहमत हूं।''

भारत की संस्कृति पर इस प्रकार से सुनियोजित आक्रमण के बावजूद, खासकर हमारी शैक्षणिक परम्पराओं पर, काफी संख्या में संस्थाएं 1835 तक जीवित रहीं। बंगाल के शिक्षा विभाग के अफसर ऐडम्स ने उस समय उस क्षेत्र की स्कूलों का सर्वेक्षण किया। उनके अनुमान से प्रत्येक बत्तीस बच्चों पर एक स्कूल उपलब्ध था और इस प्रकार 150,000 गांवों में स्कूल उपलब्ध थे।

उस समय की भारतीय शिक्षा पद्धति के बारे में मैक्समूलर ने कहा था–

'सामाजिक शिक्षा व किताबों से परे भी शिक्षा जैसी कोई चीज है और शिक्षा भारत में किसी भी क्रिश्चियन देश से उच्च स्तरीय है। यह 3R's की शिक्षा नहीं बल्कि मानवता की शिक्षा है।'

उस समय के कुछ ब्रिटिश अधिकारियों के द्वारा तैयार किए गए कुछ दस्तावेजों से पता चलता है कि कई क्षेत्रों में साक्षारत का स्तर पुरुषों में बहुत ऊंचा – 100 प्रतिशत था। महिलाओं में भी साक्षारता स्तर बहुत कम नहीं था। इसी देश में पिछली शताब्दी के अंत तक साक्षरता स्तर 10 प्रतिशत से नीचे गिर गया। उस समय भारत को एक निरक्षर देश माना जाने लगा।

राष्ट्रीय जागरण

विगत सदी के अंत में, राष्ट्रीय जागरण के अभियानों का पुनर्उद्भव देखा गया था, पर एक भिन्न रूप में– टीपू सुल्तान के युद्ध व सैनिक विद्रोह से भिन्न रूप में आर्य समाज, प्रार्थना समाज व ब्रह्म समाज के उद्भव से लोगों में अपनी सांस्कृतिक धरोहर के बारे में चेतना जागृत हुई और इससे उनमें अपनी पहचान के बारे में भावना पैदा हुई।

सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जिसका चरित्र राजनैतिक था। यद्यपि इसने स्व–शासन व प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की भागीदारी की बात करना शुरू किया, परन्तु इसके अधिकांश नेता अंग्रेजी पढ़े हुए थे व लोक–भाषा नहीं बोलते थे, अतः लोग समझ नहीं पाते थे कि कांग्रेस क्या कह रही है। क्योंकि इसके नेताओं का जन सम्पर्क नहीं था। अतः कांग्रेस को जन समर्थन कम मिला।

प्रारम्भ के काल में ब्रिटिश शासन कर्ताओं ने इसका लाभ उठाया और कुछ नेताओं को सहवरित कर लिया, जिससे आन्दोलन के प्रभाव को कम किया गया। परन्तु इस बार वे स्वतंत्रता की लहर को रोक नहीं पाए। उन्होंने उनकी चिर परिचित नीति फूट डालो और राज करो द्वारा इसकी रफ्तार भले ही धीमी कर दी हो।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी का शैक्षणिक कार्य

गांधीजी के भारत में किए गए शिक्षा से संबंधित प्रयोगों की चर्चा करने से पूर्व, हम उनके शिक्षा से संबंधित दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों की चर्चा करना चाहेंगे।

दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों की उनके आत्मसम्मान के लिए संगठित करने के दौरान, गांधीजी को कई अनुभव प्राप्त हुए और उन्होंने अहिंसक तरीकों द्वारा अपने तनाव सुलझाने व सामाजिक संबंधों की पुनर्रचना के बारे में कई प्रयोग किए। इनमें से हमारे लिए शिक्षा संबंधी प्रयोग सबसे महत्त्वपूर्ण हैं।

''अन टू दि लास्ट'' पढ़ने के बाद उन्होंने कहा–

''मैं मानता हूं कि रस्किन की इस महान पुस्तक में मैंने मेरी कुछ गहरी मान्यताओं को खोजा, इस कारण इससे मैं इतना प्रभावित हुआ कि इसने मेरे जीवन को बदल दिया।''

इस पुस्तक की प्रमुख सीखें उनके अनुसार थीं –

(क) व्यक्ति की भलाई सबकी भलाई में है

(ख) एक वकील का काम उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना एक नाई का, क्योंकि दोनों को अपने काम से अपनी आजीविका अर्जित करने का समान अधिकार है

(ग) एक मजदूर अर्थात् जमीन जोतने वाले व्यक्ति व एक कारीगर का जीवन वास्तव में जीने योग्य जीवन है। इस अनुभव ने उन्हें एक नए रास्ते की ओर मोड़ दिया व अधिक तीव्रता व प्रतिबद्धता के साथ, एक ज्यादा बेहतर जीवन की तलाश में।

गांधीजी डरबन से 'इंडियन ओपीनियन' भी संपादित व प्रकाशित कर रहे थे। उन्होंने सोचा, इसे एक खेत पर ले जाना चाहिए, जहां सब लोग मजदूरी करें, सबको समान वेतन मिले, और अपने खाली समय में सब प्रेस का काम करें। अपने इस विचार की अपने साथियों के साथ चर्चा करने के बाद, जिस पर सब सहमत थे, 'इंडियन ओपीनियन' को डरबन से चौदह मील दूर फोनिक्स ले जाया गया। इस प्रकार 1904 में फोनिक्स की बस्ती की स्थापना हुई। यह एक ऐसे लोगों का सुदृढ़ परिवार बन गया, जो कि गांधीजी के मार्गदर्शन में अपना जीवन जीने के लिए प्रतिबद्ध था।

उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि फोनिक्स फार्म के सदस्यों, विशेषकर बच्चों की शिक्षा की आवश्यकता के प्रति वे जागरूक थे।

''जैसे–जैसे फार्म बढ़ा, वहां के लड़के, लड़कियों की शिक्षा के लिए प्रावधान करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी व ईसाई लड़के थे व कुछ हिन्दू लड़कियां थीं। मैंने इसके लिए अलग से कोई शिक्षक नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं समझी। यह संभव भी नहीं था, क्योंकि योग्य भारतीय शिक्षक बहुत कम उपलब्ध थे, और जो थे उनमें से कोई जोहन्सबर्ग से 21 मील दूर कम वेतन पर आने के लिए तैयार नहीं होता... मेरा वर्तमान शिक्षा पद्धति में विश्वास नहीं था, और मेरा मन था प्रयोग व अनुभवों के आधार पर एक सही पद्धति खोजने का।''

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है–

''जब मैं जनवरी 1897 में डरबन पहुंचा, मेरे साथ तीन बच्चे थे। मेरी बहन का 10 वर्ष का लड़का, व मेरे खुद के 9 व 6 वर्ष के लड़के। इनको मैं कहां पढ़ाता? मैं उन्हें यूरोपियन बच्चों के स्कूल में भेज सकता था। परन्तु यह एक मेहरबानी व अपवाद होता। क्योंकि दूसरे किसी भारतीय बच्चे को इसकी इजाजत नहीं मिलती। क्योंकि ये स्कूल ईसाई मिशन द्वारा स्थापित किए गए थे। परन्तु मैं अपने बच्चों को वहां नहीं भेजना चाहता था क्योंकि मुझें इन स्कूलों में दी जा रही शिक्षा पसन्द नहीं थी। वहां शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होता या शायद अशुद्ध तमिल या हिन्दी होता, यह भी बिना अधिक दिक्कत के संभव हो सकता था। पर शायद मैं इन व अन्य कमियों को सहन नहीं कर सकता। मैं स्वयं उन्हें पढ़ाने का प्रयास कर रहा था, पर यह बहुत ही अनियमित था और मुझे कोई अच्छा गुजराती अध्यापक मिल नहीं रहा था... मैं किंकर्तव्यमूढ़ हो गया...''

गांधीजी की यह जद्दोजिहद चलती रही। एक तरफ तो उन्होंने वर्तमान शिक्षा पद्धति को पूर्णतः नकार दिया था और दूसरी ओर उनके पास इसके स्थान पर दूसरा कोई विकल्प नहीं था। उनको अपने बढे हुए परिवार के बच्चों को पढ़ाने का कोई तरीका नजर नहीं आ रहा था। पर, वे इस बात को लेकर पूर्णतः आश्वस्त थे कि वह शिक्षा अच्छी होती है जो व्यक्ति में आत्मसम्मान विकसित करे व कुछ मूल्यों का विकास करे। उन्होंने लिखा–

''मैं यदि आत्मसम्मान की ओर अनदेखी कर देता, और अपने बच्चों को वह शिक्षा देकर संतुष्ट हो जाता, जो दूसरे बच्चों को उपलब्ध नहीं थी, तो मैं उनको स्वतंत्रता एवं आत्मसम्मान के पाठ की कीमत पर साहित्यिक प्रशिक्षण दे देता और जब स्वतंत्रता और सीखने में से एक चुनना हो, तो कौन नहीं कहेगा कि पहले को दूसरे की अपेक्षा चुनना हजार गुना बेहतर होगा।'' अपनी पत्रिका ठीक से जम जाने के बाद वे भारतीय बच्चों के लिए एक स्कूल खोलना चाहते थे। उन्होंने 13 जनवरी 1905 को प्रोफेसर गोरवले को एक पत्र लिखा मदद के लिए। उनमें से कुछ वाक्य निम्नलिखित हैं–

''मेरी आमदनी यदि जारी रही तो मेरा इरादा एक स्कूल खोलने का है, जो कि दक्षिण अफ्रीका के किसी स्कूल से कम नहीं होगा। क्योंकि जो बच्चे इसमें पढ़ना चाहते हैं, वे यहां के छात्रावास में इसी परिसर में रहेंगे। इसके लिए भी स्वयं सेवी कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी। यहां के एक–दो अंग्रेज पुरुषों या महिलाओं को इस कार्य के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित करने के लिए तैयार किया जा सकता है, पर भारतीय शिक्षक भी अत्यंत आवश्यक होंगे। क्या आप कुछ स्नातकों को इस काम के लिए प्रोत्साहित कर सकेंगे, जिनमें पढ़ाने का रूझान हो, जो चरित्रवान हों और केवल साधारण जीवनयापन के साथ काम करने को तैयार हों। जो यहां आएं, वे पूर्णतया परखे हुए प्रथम दर्जे के व्यक्ति हों। मुझे दो या तीन की आवश्यकता है पर अधिक हों, तो उन्हें भी यहां काम में लगाया जा सकता है। जब स्कूल ठीक से चल पड़े तो एक आरोग्य निवास भी प्रारम्भ करने की मंशा है, जहां स्वच्छता के वातावरण में खुली हवा में उपचार हो सके।''

उस स्कूल में अन्ततोगत्वा 50 बच्चे हो गए। वे प्रयोग व अनुभवों के आधार पर एक सच्ची शिक्षा व्यवस्था खोजने के लिए संकल्पबद्ध थे। उन्हें यह खोजने में कुछ समय लगा, खासकर ऐसी शिक्षा व्यवस्था, जो भारत जैसे बड़े देश में बड़े पैमाने पर लागू की जा सके। क्योंकि उन्हें ज्ञान था कि उनका घर भारत है दक्षिण अफ्रीका नहीं। गांधीजी भारत लौटे।

गांधीजी ने आखिर यह सोचा कि अब उनके घर लौटने का समय आ गया है। वे कस्तूरबा के साथ 9 जनवरी 1915 को मुम्बई पहुंचे।

गांधीजी बुद्धिमान व्यक्ति थे, अतः उन्होंने तय किया कि उन्हें सीधे राजनीति में नहीं उतरना चाहिए। न ही यहां की परिस्थिति पर कोई फैसला सुनाना चाहिए। उन्होंने एक साल पूरे देश में घूमने, यहां के लोगों के जीवन को देखने व उनकी भावनाओं को समझने में बिताया। वे चाहते थे कि उन्हें शहरों व गांवों में सामान्य आदमी, जिन हालात में रहते हैं, उसकी प्रत्यक्ष जानकारी मिले। उन्हें गोपाल कृष्ण गोखले ने भी यही राय दी थी, जो कि उनके राजनीतिक गुरु समान थे। पर, सही तरीके की शिक्षा पद्धति की खोज करना उनकी सबसे पहली चिंता थी।

दो वर्षों के भीतर ही गांधीजी को तीन प्रमुख सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ करने पड़े– कपड़ा मिलों के मजदूरों की हड़ताल से संबंधित अहमदाबाद सत्याग्रह, किसानों द्वारा भूमि कर देने संबंधी खेड़ा सत्याग्रह व ब्रिटिश बागान मालिकों द्वारा नील की खेती करने वाले किसानों के शोषण के खिलाफ, चंपारन सत्याग्रह। चंपारन सत्याग्रह भारत में गांधीजी का प्रथम अहिंसक आंदोलन था। यह सत्याग्रह गोरे बागान मालिकों द्वारा असहाय किसानों के शोषण के खिलाफ संघर्ष में अहिंसक तरीकों की पहली विजय थी। हालांकि जब सत्याग्रह चल रहा था, उसी समय वे चंपारन जिले के गरीबों की हालात सुधार करने के बारे में सोच रहे थे।

'चंपारन के सत्याग्रह' के बारे में राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा था– ''वे (गांधीजी) पूरी तरह से जानते थे कि किसी भी बाहरी अभिकरण के लिए उनके हालात सुधारना असंभव था, जब तक की उनकी मानसिक व नैतिक हालात में सुधार न हो। यह बात पूरे भारत के लिए लागू होती है, पर इसे चंपारन में बिना किसी विरोध के सिद्ध किया जा सकता था।... अतः महात्माजी ने यह तय किया कि उनमें शिक्षा का प्रसार करना उतना ही आवश्यक है, जितना उनकी परेशानियों को दूर करना। जांच समिति के काम शुरू करने से पहले ही महात्माजी ने अपने कुछ मित्रों को लिखा कि उन्हें कुछ स्वयं सेवकों की आवश्यकता है, सामाजिक कार्य के लिए।''

उन्हें कुछ पढ़े लिखे लोग उनके द्वारा प्रारम्भ किए गए स्कूलों में काम करने के लिए मिल भी गए। दुर्भाग्य से बिहार के बहुत कम पढ़े लिखे लोग इसमें शामिल हुए। अपनी योजना का वर्णन करते हुए उन्होंने एक सरकारी अधिकारी को लिखा– ''मैं जो स्कूल खोल रहा हूं, उसमें 12 वर्ष से कम बच्चों को प्रवेश दिया जाएगा। आशय यह है कि जितने भी बच्चे मिल सकें, उनको सर्वांगीण शिक्षा दी जाए, अर्थात् हिन्दी या उर्दू का अच्छा ज्ञान व उसी माध्यम से गणित, इतिहास व भूगोल की प्राथमिक जानकारी, विज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों की जानकारी व साधारण उद्योग का प्रशिक्षण दिया जाए। अभी कोई बना बनाया पाठ्यक्रम तैयार नहीं किया गया है, क्योंकि मैं लीक से हटकर चल रहा हूं। मैं वर्तमान शिक्षा की ओर भय व अविश्वास से देखता हूं। बच्चों की मानसिक व नैतिक शक्ति का विकास करने की बजाय यह उन्हें कुंठित करती है।''

इस क्षेत्र में पांच स्कूल स्थापित हो गए। उनके कुछ निकटतम साथी उनकी योजना को साकार करने में उनके साथ थे। इसके बारे में उन्होंने लिखा–

''मैं वर्तमान शिक्षा पद्धति के दोषों से बचने का प्रयास करूंगा। प्रमुख बात जो की जाएगी, वह है बच्चों को चरित्रवान व संस्कारवान महिला पुरुषों के सम्पर्क में लाना, मेरी दृष्टि में यह सही शिक्षा है, और ज्ञान का सीखना इसके लिए एक साधन मात्र है।''

चंपारन सत्याग्रह सफल रहा, अपनी आत्मकथा में गांधीजी लिखते हैं–

'आज तक जो रैयत दबाई गई थी उसमें अब कुछ आत्मबल आ गया, और यह अंधविश्वास ध्वस्त हो गया कि नील के दाग कभी धोए नहीं जा सकते।... मेरी इच्छा यह रचनात्मक कार्य कुछ और दिन करने की थी, कुछ और स्कूल खोलने की व गांवों में और प्रभावशाली ढंग से प्रवेश करने की इच्छा थी। इसके लिए जमीन तो तैयार हो गई थी, पर ईश्वर को मेरी योजनापूर्ण करना मंजूर नहीं था, जैसा कि हमेशा होता है। भाग्य ने कुछ और तय किया और मुझे अन्य जगह काम में लगा दिया।'

ये स्कूल कुछ दिन चले और फिर बंद हो गए क्योंकि कार्यकर्ता नहीं थे और ऐसे पथ प्रदर्शक काम के लिए आवश्यक दूरदृष्टि नहीं थी।

सत्याग्रह आश्रम, साबरमती

दक्षिण अफ्रीका छोड़ते समय गांधीजी के मन में एक प्रश्न था, भारत में फीनिक्स परिवार को कहां बसाया जाए? सी.एफ.एन्ड्रूज के सुझाव पर पूरा समूह शांतिनिकेतन गया, उस आश्रम में जिसे कवि रविंद्रनाथ टैगोर ने बंगाल में स्थापित किया था। टैगोर का एक समग्र शिक्षा का कार्यक्रम था, जो कि संक्षेप में कहा जाय तो, एक विशिष्ठ दर्शन पर आधारित था व सृजनात्मक प्रवृत्तियों के इर्द–गिर्द बुना गया था। वे अपने इस सोच में दृढ़ थे कि शिक्षा का माध्यम सभी स्तरों पर मातृभाषा होना चाहिए। दूसरा, प्रकृति सीखने का सबसे समृद्ध केन्द्र है। और तीसरा, शिक्षा की प्रक्रिया में सृजनात्मक प्रवृत्तियों की केंद्रीय भूमिका होनी चाहिए। गांधीजी को टैगोर की शिक्षा पद्धति बहुत पसंद आई और उन्होंने इसका सम्मान किया। परन्तु यह मानना होगा कि उनका लक्ष्य कुछ और था, खासकर तात्कालिक लक्ष्य।

फीनिक्स की बस्ती शांतिनिकेतन में स्थानांतरित हो गई। कुछ दिनों बाद गांधीजी भी इसमें शामिल हो गए। उन्होंने कविवर के साथ मिलकर कई प्रयोग किए, खासकर जीवन की शिक्षा की शैक्षिक संस्थाओं का विकास किस तरह से होना चाहिए। निःसंदेह उनको शांतिनिकेतन में उनके व उनके साथियों के अनुभव से कुछ नए विचार मिले होंगे। अब उन प्रयोगों में से कुछ शेष नहीं है, सिवाय उसके कि वहां गांधीजी के ठहरने व स्वयं सेवा करने के उपलक्ष्य में वहां एक दिन मनाया जाता है।

गांधीजी के लिए अपने प्रयोग करने के लिए व अपना घर बसाने के लिए शांतिनिकेतन जगह नहीं थी। उनकी आवश्यकता थी, उन्होंने भारत के भविष्य की जो तस्वीर बनाई थी, उससे संबंधित प्रयोग करने की। यह परिवार गुजरात गया, पहले कोचराब और आखिर में साबरमती में, जो कि अहमदाबाद के बिलकुल बाहर स्थित है।

राष्ट्रीय राजनीति के अतिरिक्त एक और बात थी, जिसमें उनका दिमाग हमेशा लगा रहता था। और वह थी भारत के जनसामान्य के लिए शिक्षा। वे जानते थे कि ब्रिटिश काल से पूर्व भारत में शिक्षा का क्या अर्थ था। उन्होंने 23 दिसम्बर 1916 को इलाहाबाद में एक गोष्ठी में भाषण दिया, जिसे 'द लीडर' में प्रकाशित किया गया (27–12–1916) उसमें से कुछ वाक्य निम्नलिखित हैं–

'गांधीजी ने फिर प्राचीन शिक्षा पद्धति का वर्णन किया.... गांव के शिक्षक द्वारा जो प्राथमिक शिक्षा दी जाती थी, उसमें विद्यार्थियों को वह सब सिखाया जाता था, जो उनके व्यवसाय के लिए आवश्यक था. ..। जो उच्च शिक्षा के लिए जाते थे, उन्हें सम्पत्ति का विज्ञान (अर्थशास्त्र), नीतिशास्त्र व धर्मशास्त्र का ज्ञान दिया जाता था। प्राचीन काल में शिक्षा के लिए कोई पाबन्दियां नहीं थीं। ऐसी शिक्षा पद्धति के कारण ही भारत की सभ्यता कई विपत्तियों के बावजूद हजारों

वर्षों तक जीवित रही। निःसंदेह भारत में नई सभ्यता की लहर भी आ रही थी। पर उन्हें विश्वास था कि यह क्षणिक है और अन्ततोगत्वा भारतीय सभ्यता पुनर्जीवित होगी।'

गांधीजी अपनी आदर्श शिक्षा पद्धति के निकट पहुंच रहे थे। पर सच्ची आदर्श शिक्षा पद्धति की खोज से पूर्व उन्हें और कई प्रयोग करने थे।

राष्ट्रीय शिक्षा

साबरमती आश्रम ठीक से व्यवस्थित हो जाने के बाद गांधीजी ने एक राष्ट्रीय विद्यालय की योजना बनाना प्रारम्भ किया। इसके परिचय पत्र में इसके मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा–

''यह शिक्षा शारीरिक, बौद्धिक व धार्मिक होगी। शारीरिक शिक्षा के अंतर्गत कृषि, हाथ की बुनाई, लकड़ी व लोहे के काम के लिए औजारों को काम में लेना होगा.... इसके अतिरिक्त उन्हें व्यायाम कराया जाएगा.... इस ड्रिल के अंतर्गत उन्हें टुकड़ियों में कदम मिलाकर चलाना (मार्च पास्ट) तथा किसी दुर्घटना के समय जैसे आग लगना, प्रत्येक व्यक्ति को कुशलता व शांतिपूर्णक कार्य करने का प्रशिक्षण दिया जाएगा.... उन्हें स्वस्थ बनाए रखने व सामान्य बीमारियों के लिए घरेलू इलाज का प्रशिक्षण दिया जाएगा और इसके लिए आवश्यक शरीर विज्ञान व वनस्पति विज्ञान का भी ज्ञान दिया जाएगा.... बौद्धिक प्रशिक्षण हेतु वे गुजराती, मराठी, हिन्दी व संस्कृत अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ेंगे.... प्रथम तीन वर्षों में अंग्रेजी का अध्यापन बिल्कुल नहीं होगा।''

उच्चतम स्तर तक शिक्षा का माध्यम गुजराती रखा गया (स्थानीय लोगों की मातृभाषा)। पाठयक्रम में सामान्य विषय सम्मिलित किए गए थे जैसे– गणित, बही–खाता हिसाब रखना, इतिहास, भूगोल, रसायन विज्ञान, व खगोल शास्त्र, धार्मिक शिक्षा में सामान्य नैतिकता के सिद्धान्त सिखाए जाते थे। इस शिक्षा का उद्देश्य यह था कि कुछ वर्षों में विद्यार्थी में एक अच्छे जानकार स्नातक के बराबर क्षमता आ जाए।

उनके दिमाग में इस आदर्श शिक्षा पद्धति के उद्देश्य स्पष्ट थे, पर अभी वे इस पद्धति की कोई ठोस योजना देने की स्थिति में नहीं थे, जो कि अपनी परिभाषा में ब्रिटिश शिक्षा पद्धति से भिन्न हो। वे इस बारे में स्पष्ट थे कि हर स्तर पर शिक्षा मातृभाषा में दी जाए। उन्होंने 1917 में द्वितीय गुजरात शैक्षिक सम्मेलन में कहा–

''सबको यह स्पष्ट होना चाहिए कि सर्व प्रथम बात जो करनी है, वह यह कि हम इस निश्चित निर्णय पर पहुंचे कि शिक्षा का माध्यम क्या हो। जब तक यह नहीं होता बाकी सब प्रयास मुझे लगता है, बेमाने होंगे।''

उन्होंने पूरे देश की एक भाषा हो इस पर भी बहुत जोर दिया। उन्होंने राष्ट्र भाषा की पांच आवश्यकताएं बताई–

(क) सरकारी अफसरों को सीखने में आसान हो,

(ख) देश के सब हिस्सों के मध्य धार्मिक, आर्थिक व राजनैतिक सम्पर्क का साधन बनने योग्य हो,

(ग) काफी बड़ी संख्या के भारतीयों की बोलचाल की भाषा हो,

(घ) हर एक के लिए सीखना आसान हो,

(ङ) तात्कालिक या क्षणिक आधारों को ध्यान में रखे बिना उसका चयन किया जाए।

यह स्पष्ट था कि अंग्रेजी उपरोक्त सभी कसौटियों को पूरा नहीं करती। गांधी ने सोचा हिन्दी व

आखिरकार हिन्दुस्तानी ही ऐसी भाषा है, जो उपरोक्त सभी शर्तों को पूरा करती है।

गांधी का मानना था कि शिक्षा का प्रमुख कार्य चरित्र निर्माण है। तीसरी बात, जिस पर उनका आग्रह था वह थी संगीत और चौथी बात थी, शारीरिक शिक्षा। उन्होंने स्त्री शिक्षा की पुरजोर पैरवी की।

हमें लगता है हमारा सम्पूर्ण जीवन परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने पर निर्भर करता है। गांधीजी ने कहा–

''भारत को परीक्षाओं के बारे में कभी पता नहीं था। यह पद्धति हाल ही शुरू की गई पद्धति है.... इस पद्धति के बहुत दुरुपयोग हुए हैं, हर विषय परीक्षा को ध्यान में रखकर पढ़ाया जाता है। और विद्यार्थियों के दिमाग में यह बात पूरी तरह बैठा दी जाती है कि केवल परीक्षा उत्तीर्ण करना ही आवश्यक है।'' उनकी योजना में कहा गया–

'इस विचार को ध्यान में रखते हुए कि परीक्षाएं बिलकुल अवांछनीय है, इस संस्था में विद्यार्थियों की जांच दो बिन्दु को ध्यान में रखते हुए की जाएगी– क्या शिक्षक ने सही प्रयास किए हैं और क्या विद्यार्थियों की समझ में आया है। विद्यार्थी परीक्षा के भय से मुक्त हो गए।'

राष्ट्रीय विश्व विद्यालय–विद्यापीठ

प्रथम विश्व युद्ध के बाद भारत को ब्रिटिश लोगों के हृदय परिवर्तन की आशा थी। परन्तु इसे मिला रौलेट एक्ट। सारे लोगों ने इसका विरोध किया। अप्रैल 1919 में जलियांवाला बाग में एक हजार से अधिक लोगों का फौज द्वारा नरसंहार किया गया। इससे भारत के आत्मसम्मान को चोट लगी और वह बाहरी सत्ता के विरोध में बगावत करने खड़ा हुआ। गांधीजी ने कहा जलियांवाला बाग तो केवल शुरुआत है। हमें एक हजार ही नहीं, कई हजार हत्याओं का धैर्य से सामना करना पड़ेगा। इससे पहले कि हमें वह दर्जा मिले, जिसे दुनिया की कोई ताकत छीन न सके। आशा है, हम सभी संबंधित व्यक्तियों को धैर्य छोड़ने की बजाय उसे बनाए रखना चाहिए और फांसी को जीवन की एक सामान्य घटना समझना चाहिए।

उन्होंने 1 अगस्त 1920 को वाईसराय को लिखा – ''मैं उस सरकार के प्रति आदर और प्यार कायम नहीं रख सकता, जो अपनी अनैतिकता का बचाव करने के लिए एक के बाद एक गलत काम कर रही है।'' गांधीजी व कांग्रेस ने ब्रिटिशर्स के साथ पूर्ण असहयोग प्रारंभ कर दिया। और आह्वान में सभी विधायी संस्थाओं, सरकारी स्कूलों तथा न्यायालयों का बहिष्कार करने को कहा गया। 27–29 अगस्त को हुए गुजरात राजनैतिक सम्मेलन में सभी अलंकरण व पदक प्राप्त व्यक्तियों को इन्हें लौटाने का आह्वान किया गया। वकीलों को याचिकाएं, निजी स्तर पर निपटाकर न्यायालयों का बहिष्कार करने को कहा गया।

आह्वान था कि अभिभावकों को अपने बच्चों को ऐसे सभी स्कूलों से निकाल लेना चाहिए जिनका किसी भी प्रकार से सरकार से संबंध है। कॉलेज के विद्यार्थियों को स्वतः कॉलेज छोड़ देने चाहिए। मतदाताओं को किसी व्यक्ति को मत नहीं देना चाहिए, जो काऊंसिल के लिए खड़ा हो। उम्मीदवारों को अपनी उम्मीदवारी वापस ले लेनी चाहिए। प्रत्येक स्त्री–पुरुष को स्वदेशी के नियम की पालना करनी चाहिए और सूत कातना चाहिए।

हालांकि यह एक पूर्णतया राजनैतिक अभियान था। पर इसका देश के शैक्षिक परिदृश्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। सरकार से संबंधित स्कूल व कॉलेजों का बहिष्कार करने का आह्वान देने का अर्थ था

कि इनके स्थान पर वैकल्पिक संस्थाओं की व्यवस्था की जाए। यह विद्यापीठों के स्थापना का प्रारम्भ था, जो कि– देश भर के राष्ट्रीय स्कूल व कॉलेज थे। गांधीजी ने नवम्बर में गुजरात के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय– 'गूजरात विद्यापीठ' की स्थापना की। इस प्रकार की राष्ट्रीय संस्थाएं कलकत्ता, पटना, अलीगढ़, मुम्बई, बनारस व दिल्ली में भी स्थापित हुईं। जामिया मिलिया इस्लामिया राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय, गांधीजी व मोहम्मद अली जिन्ना के संयुक्त प्रयासों से स्थापित हुआ। इन संस्थाओं का राजनैतिक चेतना जागृत करने में व शैक्षिक जागृति पैदा करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन शिक्षा के केन्द्रों की स्थापना, शिक्षा के प्रति एक नया नजरिया विकसित करने का एक कदम था। इनमें स्वतंत्रता की भावना विकसित की गई, जो एक स्वस्थ व्यक्तित्व के लिए आवश्यक है। दूसरा, इनमें स्वतंत्रता सैनानियों की एक फौज तैयार हुई, अगले 'मुक्ति संग्राम' के लिए। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि इनमें गांधीजी को अपनी शिक्षा पद्धति बुनियादी तालीम जो कि 1937 में प्रारंभ की गई, के ढांचागत पक्ष के संबंध में प्रयोग करने के केन्द्र उपलब्ध हुएं। इस समय तक गूजरात विद्यापीठ व जामिया मिलिया इस्लामिया ने अपनी ढांचागत व्यवस्थाएं पूर्ण रूप से विकसित कर ली थी। एक तरह से नई योजना को परीक्षण का अवसर मिला।

शेष अगले अंक में...

देवी प्रसाद : सन् 1944 से 1962 तक सेवाग्राम (वर्धा) में नई तालीम के शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय में प्रशिक्षक रहे हैं। हिन्दी रूपान्तरण **– ए.बी. फाटक**, विद्या भवन सीनियर सैकण्डरी स्कूल रहे। शाह गोवर्द्धनलाल काबरा शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय जोधपुर में प्राचार्य रहे हैं। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी से जुड़े हैं।